P: ISSN NO.: 2321-290X RNI : UPBIL/2013/55327 VOL-6* ISSUE-7* (Part-2) March- 2019
E: ISSN NO.: 2349-980X **Shrinkhla Ek Shodhparak Vaicharik Patrika**

भगवानदास मोरवाल के कथा साहित्य में दलित परिवारों का स्वरूप

सारांश

भगवानदास मोरवाल दलितों की स्थिति को अच्छी तरह से पहचानते हैं। उन्होंने अपने कथा साहित्य में दलितों पीड़ा उनका शोषण और स्त्रियों की स्थिति को दिखाया है जो सदियों से ऐसे ही चली आ रही है को दिखाया है कि किस प्रकार एक व्यक्ति जब दलित परिवार में जन्म लेता है तो वह चाहे कितनी भी उन्नति कर ले लेकिन उसे नीच जाति के कलंक से कभी भी मुक्ति नहीं मिलती। मोरवाल ने अपने साहित्य में दलितों की ऐसी की स्थिति को दिखाने का प्रयास किया है।

मुख्य शब्द : भगवानदास मोरवाल, दलित, दलित साहित्य।

अजायब सिंह
शोधार्थी,
हिंदी विभाग,
गुरूकाशी विश्वविद्यालय,
तलवंडी साबो, बठिंडा, भारत

ज्ञानी देवी
सहायक प्राध्यापक
हिंदी विभाग,
गुरूकाशी विश्वविद्यालय,
तलवंडी साबो, बठिंडा, भारत

प्रस्तावना

दलित शब्द का दबा हुआ, नीच आदि जाति का समझा जाता था। लेकिन धीरे–धीरे दलित शब्द का प्रयोग होने लगा और दलितों पर साहित्य की रचना की जाने लगी जिसमें उनकी कठिनाईओं को उभारने के प्रयास किए गए। भगवान मोरवाल ने भी इसी दिशा में कथा साहित्य की रचना की।

भगवानदास मोरवाल के कथा साहित्य में दलित परिवारों का स्वरूप

भगवानदास मोरवाल एक सटीक एवं सचेत बात को अपने ढंग से करने वाले लेखकों में से एक हैं। मोरवाल के साहित्य में जो भी बात प्रस्तुत हुई है, उसमें हमारे समाज की सच्ची और आँखों देखी बात को प्रस्तुत किया गया है। खासकर मोरवाल ने अपने साहित्य में कंजर जाति के लोगों को उजागर करने का प्रयास किया है। इस पर साधना अग्रवाल कहती हैं कि–

''भगवानदास मोरवाल हिन्दी के उन कुछ, थोड़े से उपन्यासकारों में हैं जिनके दृष्टिपथ में हमारे समाज का वह हिस्सा है जो कंजर जाति का है, जिसे सबाल्टर्न या निम्नवर्गीय कह सकते हैं।''[1] मोरवाल के साहित्य के केन्द्र में हैं दलित, पीड़ित, शोषित और स्त्री जो सदियों से गुलामी के जंजीरों में पड़े हुए हैं। कभी साहूकारों द्वारा तो कभी उच्चवर्ग के लोगों के द्वारा निरंतर उसे बताया जाता रहा है, कंजर जाति में ही जन्म लेते हैं और इसी में ही अपनी पूरी जिंदगी बिता देते हैं। मुख्यधारा से जुड़ने के लिए पूरी जिंदगी कोशिश करते रहते हैं, मृत्यु को पा लेने के बाद भी उन्हें इससे बाहर निकलने का अवसर नहीं मिलता है। जीवन के हर मोड़ पर उसे दबा–कुचला जाता है या तो बाहर ही रखा जाता है। जब इस में रह रहे लोग अपने अधिकारों की माँग करते हैं, तब उसे सिर्फ आशाएँ ही दिखाई जाती हैं। कभी पूरी न होने वाली आशा में सिर्फ निराशा ही हाथ लगती है। मोरवाल ने अपनी कलम के माध्यम से ऐसे समाज को जो इससे संबंधित है, या तो इसी में रहने के लिए विवश और लाचार है। उसने इस से बाहर निकालने का सफल प्रयास किया है। कंजर जाति के लोग अपनी आर्थिक परिस्थिति के कारण कभी–कभी इस से बाहर नहीं जा पाते या तो कभी राजनीतिज्ञों की गंदी चाले ही उसे विवश कर देती हैं। साहित्यकार समाज का सच्चा आईना प्रस्तुत करते हैं, मोरवाल ने अपने साहित्य के माध्यम से हमारे समाज के अनछुआ या अनकही बातों को प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। दलित जो सिर्फ मैला उठाने का ही काम करते थे, उसे आज मुख्यधारा से जोड़ने का सफल प्रयास मोरवाल ने किया है। शहरी सभ्यता में फिर भी कुछ बदलाव आया है, ग्रामीण जीवन में आज भी अछूत समस्या वही है जो बरसो पहले हमारे साहित्यकारों ने प्रस्तुत की है। आज भी छुआ–छूत के नियमों का पालन किया ही जाता है। साथ ही उन नियमों का पालन भी सबको करना ही पड़ता है। मोरवाल ने अपने साहित्य में इन दलितों को भी समाज का ही एक महत्वपूर्ण हिस्सा माना है और उसे भी समाज में उतना ही स्थान मिलना चाहिए जितना उच्चवर्ग को मिलता रहा है। दलितों के साथ–साथ विस्थापन की समस्या को भी स्थान दिया है। आज विकास के नाम पर किस प्रकार बेरहमी से ग्रामीण

जनता को शहर के प्रति आकर्षित करके गाँवों को खत्म करने का प्रयास करते हैं, इस बात को प्रस्तुत किया है। जो गाँव कभी उनकी जन्मभूमि कहलाता थी अब वह सरकार के हाथों में चले जाते हैं, पर वहाँ जाकर उसे सिर्फ निराशा ही हाथ लगती है। शिक्षित ग्रामीण युवकों को नौकरी दिलाने का लालच देकर उससे नौकर का काम करवाते हैं।

नहीं रुका गया वैद्यजी से। रास्ते में ही पूछ लिया कमला बुआ से, ''बुआ, बात जब पौने तीन में तय हो गई थी, फिर क्यों तू साढ़े तीन लाख देने पर राजी हो गई?''

तिरछी निगाहों से घूरा बुआ ने वैद्यजी को।

गहरी साँस लेते हुए बोली, ''बात साढ़े तीन या पौने तीन की नहीं है बैद्जी। बात है कौल की। कम–से–कम अब बिरादरी यह तो ना कहेगी कि थोड़े–से लालच में कमला पीछे हट गई। वैसे, एक बात बताऊँ बैद्जी.....असल बात कुछ और है।''

मुँह ताकने लगा वैद्यजी बुआ का।

''असल बात यह है बैद्जी कि छोरी सुन्दर बहुत है। कम–से–कम यह खिलावड़ी तो अपनी तरह जनेगी।''

''तो इसकी कीमत है साढ़े तीन लाख।''

''मेरे हिसाब से तो मरे यह भी कम है।'' अक्कल दाढ़ में फँसे 'हुस्न बाग' के एक ज़िद्दी किणके को बाहर निकालने का प्रयास करती हुई बोली बुआ।

''यह भली रीत हुई कि लड़कीवालों से दहेज लेने के बजाय उलटा दिया जा रहा है। यह तो लड़की को खरीदने जैसा हो गया।''

''और मरे, तुम इज्जतदारों में जो लड़का खरीदा जाता है, वह क्या है ?'' वैद्यजी ने कुछ नहीं कहा, बुआ के इस तर्क पर।

''ऐसे ही आदमी को निरभाग और लालची कहा जाता है बैद्जी, जो सोने का अण्डा देने वाली मुर्गी को इतने सस्ते में दे रहा है। इत्ती रकम तो यह दो–ढाई बरस में कूटकर दे देती। नैन–नक्श ना होते तो मजबूरी थी। पता ना इसकी कैसे मति मारी गई। मरी कैसे भाभी बनने के लिए राजी हो गई। अरे, बीस–पच्चीस हजार तो यह खड़े–खड़े मत्था ढकाई के धरवा लेती।''

''क्यों, नैन–नक्शवाली नहीं करती हैं ब्याह ?''

''क्या मिलता है ब्याह करके। जिन्दगी भर खसम और औलाद के साथ–साथ भाभी बनी सास–ननदों की चाकरी ही तो करनी पड़ती है। मरी, बुआ बनी रहती तो उमर भर मरे करती।'' कमला बुआ का गेहुँआ चेहरा ताँबई हो उठा।

थोड़ी देर के लिए वैद्यजी की समझ में नही आया कि कमला बुआ अपनी होने वाली बहू को परोक्ष रूप से शाप दे रही है, या आसीस दे रही है?

''पर बुआ, बुआवाला काम तो यह ब्याह के बाद भी कर लेगी।''

''बैद्जी ना ! खिलावड़ी बनके बुआ बनना आसान है। भाभी बने पीछे खिलावड़ी बनना मुश्किल है।''

''मतलब ?''

''मतलब यह कि जो एक बार लाइन में डल गई, वह जिन्दगीभर बुआ बनी रहेगी, ब्याह नहीं करेगी..... .और जो भाभी बन गई वह धंधा नहीं करेगी। पता नहीं, इस मरी ने क्या सोचके भाभी बनने का फैंसला किया वरना बुआ बनके उमर भर रानी बनके रहती।'' बुआ की छोटी–छोटी आँखों में अतीत का झुटपुटा गहराने लगा जैसे, ''वैसे भी बैद्जी, बंस बहुओं की औलाद से चलना है, बेटी–बुआ या धेवता–धेवतियों से नहीं.....और फिर घर सँभालनेवाली भी तो हो कोई। बुआ मेरी खिलावड़ी बन धंधा करे, या घर सँभाले।''

दीर्घ निःश्वास लेते हुए वैद्यजी ने उसे इतनी जोर से बाहर छोड़ा जैसे फेफड़ों में दुर्गन्ध भर गई हो। उसकी लड़की के ताऊ सिकंदर की नीयत में आई खोट का सार अब समझ में आया। वैद्यजी मन–ही–मन मुस्कराया सिकंदर की कुटिलता पर। उसने हल्के से बुआ की ओर देखा तो लगा अक्ल दाढ़ में फँसे 'हुस्न बाग' के किणके को जीभ बाहर निकालने में सफल हो गई है।

''ना, यहीं रहेगा गाजूकी में। अंगूरी ने कर दिया होगा इन्तजाम।''

''साथ भेजने में क्या बुराई है ?''

''मरे, तुझे इसमें कोई बुराई ना दीख रही है। ना–समझ है। हो जाए कोई ऊँच–नीच और फिर इस इज़्ज़तदार का क्या भरोसा, ले उड़े इसे सदा–सदा के लिए। वैसे भी नोट छापने की मशीन तो यह अब बनेगी। देखियो, एकाध साल में अंगूरी को यह मालामाल कर देगी। रोज हजार–नौ सौ से क्या कम कमाएगी।''

हुमकते हुए जब कमला बुआ वैद्यजी को यह सब बता रही थी, तभी उसे मंगल की सगाई का प्रसंग याद आ गया। वैद्यजी को उस समय कमला बुआ का कहा एक–एक शब्द आज भी याद है। अब गाँठे खुलने लगी हैं बुआ द्वारा कहे गए उन शब्दों के अर्थों की कि बैद्जी, लौंडिया सुन्दर है.....ऐसे ही आदमी को हमारे कंजरों में निरभाग कहा गया है, जो अपने थोड़े–से लालच के लिए सोने के अंडे देने वाली मुर्गी को इतने सस्ते में दे रहा है वरना इत्ती रकम तो यह खिलावड़ी बनके एक–डेढ़ साल में कूटके रख देती बाप के हाथ पर। आज समझ में आ रहा है उसके कि सन्तों का ताऊ सिकन्दर, बेटी की नहीं, रकम छापने की मशीन की कीमत माँग रहा था।[2]

पंचायत ने चीरणी से पहले दोनों बहनों से नियमानुसार धरोड़ के रूप में छह–छह तोला सोना, पंचायत और पंचो के खर्चे–पानी के रूप में दो–दो हजार रुपए नक़द के अलावा फ़ैसला होने तक, यदि वह अगले दिन भी जारी रहती है, धरोड़ का ब्यौरा रखने वाले को सौ रुपए प्रतिदिन के हिसाब से, तथा पूरी पंचायत को पानी पिलानेवाले को दिए जाने वाले जैसे छोटे–मोटे खर्चों की रकम पहले ही धरवा ली। दोनों मुदी को पहले ही साफ़–साफ़ बता दिया गया कि जो मुदी पंचों का फ़ैसला नहीं मानेगा, समझो उसकी धरोड़ हो गई ज़ब्त। दोनों बहनों को उनके कुल देवता की सौगन्ध दिलवाते हुए चेतावनी दे दी गई कि उस धरोड़ के बारे में कोई भी पुलिस को नहीं बताएगी।

एक नहीं, पूरे दो दिन बैठी पंचायत। दो दिन तक चीरणी चलती रही और दोनों मुदी के तर्क–विकर्त और पंचों के बीच उस पर बहस होती रही। मगर फ़ैसला होने का नाम न ले। इन दो दिनों में कमला बुआ जैसे

खंगर हो गई। न ढंग से खाना, न पीना। पूरी रात आँखों में बीती। पता नहीं पंचायत क्या फ़ैसला देगी।

दूसरा दिन भी बीत गया। सूर्यास्त के बाद आख़िर वह घड़ी आ ही गई, जिसका कमला ही नहीं, पूरी गाजूकी को इन्तजार था। सुशीला–माया से पहले पंचों ने माँ होने के नाते सबसे पहले कमला से पूछा।

''कमला, कोई ऐतराज तो ना है पंचों का फ़ैसला मानने में ?'' मुखिया ने पूरी पंचायत के सामने पूछा।

''ना।'' कमला ने ज़्यादा कुछ नहीं कहा।

''ठीक है, तो फिर दोनों मुदी की चीरणी सुन पंचों ने यह माना है कि माया से गलती हुई है। चाहे यह भूल से हुई है या उसने जानके की है.....गलती तो गलती है।''

कमला ने माया की ओर देखा तो उसके चेहरे की रंगत देख एक पल के लिए लगा जैसे उसके भीतर शीशे के छोटे–छोटे टुकड़े चटक रहे हैं। माया के सफ़ेद पड़ते चेहरे और भयातुर आँखों को देख नहीं रुका गया कमला से। फफककर रो पड़ी।

''तो, माया को गुनहगार मानते हुए पंचायत ने यह फ़ैसला किया है कि एक महीने तक उसके पास किसी कज्जे को फटकने नहीं दिया जाएगा....''

मुखिया अभी अपना वाक्य पूरा करता कि सुशीला तमतमाती हुई खड़ी हुई और बिजली–सी कड़कते हुए बोली, ''पंचो, मुझे ना है मंजूर यह....''

''सुशीला, फ़ैसला पहले पूरा सुन ले फिर कहियो कुछ।'' मुखिया ने सुशीला को बीच में टोका, और फिर आगे बोला, ''साथ ही पंचों ने यह फ़ैसला लिया है कि अपनी सगी बहन को लगा–बँधा कज्जा तोड़ने के गुनाह में माया के माथे के ऊपर के बाल काटने का हुकम दिया जाए।''

ज़मीन फट गई माया के लिए। सूखे पत्ते–सी काँपने लगी। इस सज़ा का तो उसे बिलकुल भी गुमान नहीं था जबकि कमला को अनुमान हो गया था। किसी दरख्त पर बैठे परिन्दों–सी चिल्ल–पों एकाएक तेज़ हो गई।

''माया, आगे आ !''

पंचों के बीच से उछले इस आदेश पर ख़ामोशी छा गई। सबकी साँसे आगे के दृश्य की प्रतीक्षा में रुक–सी गईं।

माया धीरे–से अपराधिन बनी, अपनी जगह से खड़ी हुई और पंचों के समक्ष आकर खड़ी हो गई। लालटेनों की मद्धिम रोशनी से बनी परछाइयाँ एक–दूसरे में ऐसे गड्डमड्ड हो गईं कि यह पता लगाना मुश्किल हो गया कौन–सी परछाई किसकी है? इन्हीं मिश्रित परछाइयों में एक परछाई रह–रह कँपकँपाने लगी, तो लगा मानो लालटेनों की जलती बाती से कोई चुहलबाजी कर रहा है। इन्हीं परछाइयों में एक परछाई के हाथ में कैंची को देख माया को लगा जैसे तेज़ धारदार खंज़र किसी ज़िबह होने वाले जानवर का इन्तजार कर रहा है।

''माया, सिर से पल्लू हटा !'' हाथ में कैंची थामे इसी परछाई ने आदेश दिया।

सिर से पल्लू हटने के बाद उस परछाई ने माया के माथे के ऊपर छाए घने मेघों के गुच्छे में अँगुलियाँ फँसाई और उनमें जितने बाल फँसे, उन्हें भच्च से कैंची से उड़ा दिया। माया की आँखें बन्द होती चली गई। मुँह से निकलने वाली चीख को बाहर आने से पहले ही पी गई वह।[3]

''हूँऽऽऽ !'' कॉमरेड 'प्रचंड' ने एक लंबा हुँकारा भरा और फिर दीवार से पीठ लगा उसे सीधी करते हुए बोले, ''तो क्या तुमने भी अचानक आई क्रांतिकारी भगोड़ो, कैरियरवादियों और मुक्त चिंतको की इस फौज में शामिल होने की तैयारी कर ली है?''

''इसमें बुराई क्या है बाबूजी। वैसे भी इनके अलावा कोई विकल्प नहीं है हमारे पास। आपको तो पता है कि लोग अच्छी–खासी नौकरियाँ छोड़कर एनजीओज में होल टाइमर हो रहे हैं। मैं ऐसे कई लोगों को जानता हूँ जो अपनी एनजीओ के बल पर बड़ी–बड़ी हाऊसिंग सोसाइटियों में तीन–तीन बैडरूम के साधन–संपन्न घरों के मालिक हैं। कई–कई महँगी कारें हैं उनके पास।''

बेटे तथागत का इशारा समझ गए 'प्रचंड' लेकिन इसे कौन समझाए कि उनके पतन की एक झलक वे करवा चौथ के दिन देख चुके हैं। कोई जवाब देते नहीं बना उनसे। कमरे में एकाएक खामोशी छा गई। यह खामोशी टूटी भी तो इस विषाद के साथ, ''माना इस आर्थिक विषमता और जातिवादी समाज में ऐसा करना कोई बुराई नहीं है। मगर संघर्ष और कुर्बानी के जरिए हक दिलाने के लिए लोगों को इकट्ठा करने के बजाय, उनमें मुफ्त में मिली खैरात से जीने की आदत डालना बुराई है। बुराई है इन साम्राज्यवादी शोषण और मुनाफे की दुकानों का सेल्समैन बनने में।''

''आप ऐसा न सोचें बाबूजी। हमारा नागरिक संगठन ग्रासरूट लेवल पर दलित और स्त्री प्रश्न संबंधी मुद्दों का अध्ययन करेगा।''

''ग्रासरूट ! क्या शब्द है। लगता है जैसे घास ही घास रह गई है, जड़ों का कुछ पता नहीं है। वैसे इस शब्द का मतलब उन्हें मालूम भी है जिनके लिए इसे ईजाद किया है ? यही क्यों, पॉपुलर पावर, जैंडर इक्वालिटी, एम्पावरमैंट, सर्वाइकल स्ट्रेटेजी, सस्टेनेबल डेवलपमेंट, रिसोर्स पीपुल्स, सेल्फ हैल्प, बाटम–अप–लीडरशिप, ये ऐसे डेढ़ दर्जन शब्द हैं जो इस मुनाफे और शोषण की दुकानों के सेल्समैंनो का मूलमंत्र है। इस गरीब मुल्क की ये ऐसी नई–नई दुकाने हैं जो खुद को उपनिवेश बनाने पर आ जाता है। जिनके ये तथाकथित सोशल वर्कर और एक्टिविस्ट यानी ये नरक मसीहा ब्लैकमेलिंग से लेकर चार सौ बीसी के सारे हथकंडो को अपनाने में इतने माहिर हैं कि उनकी बेईमानी भी कुछ वक्त के बाद ईमानदारी नजर आने लगती है।''

''बाबूजी, आप तो हमेशा की तरह फिर से भाषण देने लगे।'' तथागत अपने पिता की इस आदत से आजिज आते हुए झल्लाया।

''यह भाषण नहीं हकीकत है। अचानक इधर ऐसे सोशल एक्टिविस्टों की बाढ़–सी आई हुई है, जो वर्ग आंदोलनों को खारिज कर खाली दलित और स्त्री प्रश्नों पर अधिक जोर दे रहे हैं। ऐसा अचानक नहीं हुआ है। इसकी शुरुआत तभी हो चुकी थी जब सोवियत संघ और चीन के मार्क्सवादी–कम्युनिस्ट आंदोलन पर हमले तेज

हुए थे। तभी से इस देश में ऐसे दलित और नारीवादी पैदा होने शुरू हो गए, जो इन वर्गों को संगठित करने की बेमानी कोशिश कर रहे हैं और इनकी आड़ लेकर वामपंथ पर हमला बोल रहे हैं।''

''लेकिन बाबूजी, आप यह क्यों भूल रहे हैं कि जबसे आपके मार्क्सवाद और कम्युनिज़्म की धार कुंद हुई है तभी से इन दोनों वर्गों को नई रोशनी मिली है। इसीलिए गांधीवादी और वामपंथी जैसे खूँटों को तुड़ा लोग युरोप और अमेरिका की ओर देख रहे हैं.....और अब आप ग्रासरूट पर ही सवाल खड़े कर रहे हैं !''

''आखिर तुम किस ग्रासरूट की बात कर रहे हो – उसकी जो अपने नाम पर मिलने वाले उस पैसे को देख ही नहीं पाता जो उसका एनजीओ बटोरकर लाता है. ...या फिर उसकी जो कभी इन ग्रासरूटी लीडरों या कहिए बुद्धिजीवी थानेदारों को मिलने वाली मोटी पगार, उनकी विदेशी यात्राओं, उनके शाही रहन–सहन और एसी कारों में बहुराष्ट्रीय कंपनियों की बोतलों से घिरे लेपटॉपी सेमिनार–सम्मेलनों के बारे में सोच भी नहीं सकता।

''तुम्हारे इन ग्रासरूटी वर्करों को तो पता ही नहीं चलता कि ऊपर क्या खेल हो रहा है। इन्हें तो इकट्ठा ही तभी किया जाता है जब इनके एनजीओ के डायरेक्टर या तथाकथित सीईओ और विदेशी दाताओं के बीच डील पक्की हो चुकी होती है। सच्चाई तो यह है कि सारे फैसले ये डायरेक्टर और सीईओ खुद लेते हैं.... बरखुरदार, जिस दिन इस एनजीओ की दुनिया में सामूहिक फैसले लिए जाएँगे, उस दिन दुनिया–भर के गरीबों और मेहनतकशों की तकदीर ही बदल जाएगी।'' कहते–कहते कॉमरेड सोहनलाल 'प्रचंड' के मोटे चश्मे के पीछे पनीली रेखाएँ चमक उठीं।

''कविता चलो। मैंने पहले ही कहा था कोई फायदा नहीं है यहाँ आने का।'' तथागत गुस्से से बोला।

''बाबूजी, ये समानता, बराबरी, वर्ग आंदोलन सुनने में ही भले लगते हैं। यह सब थ्योरी है और थ्योरी को प्रोफेशन तक सीमित रखना चाहिए।'' बहू कविता ने बिना विचलित हुए कहा।

''यही थ्योरी तो इनसे जिंदगी–भर पार्टी के लिए चंदा मँगवाती रही, जबकि दूसरे घूमते रहे रूस और चीन। अगर ये थोड़ी–सी व्यावहारिकता दिखाते तो आज ये इस सीली कोठरी में अकेले पड़े, इन बेजान तस्वीरों से नहीं बतियाते होते। ये तो अपनी प्रचंडता की रौ में भीड़ की अगुवाई करते रहे और मलाई काटते रहे इनके कॉमरेड ठाकुर मोहन सिंह, कॉमरेड लक्ष्मीकांत तिवारी, कॉमरेड रामप्रसाद दुबे, लाला दीनानाथ गुप्ता। ये तो देखते रहे गरीबों और मेहनतकशों की तकदीर बदलने के सपने और उनके बच्चे चले गए अमेरिका और यूरोप पढ़ने। यानी एक तरफ साम्राज्यवाद को गाली दो, दूसरी तरफ अपने वारिसों को वीजा दिलवाने के लिए इन्हीं की एजेंसियों की परिक्रमा लगाते फिरो। वैसे एक बात पूछँ बाबूजी, याद करके बताइये कि आपके इन कॉमरेडो ने कितनी बार अपनी बैठकों में, आपको अपनी प्यालियों में साथ बैठाकर चाय पिलाई है.....कुछ याद है ?''

तथागत के इस प्रश्न से कॉमरेड सोहनलाल 'प्रचंड' असहज हो उठे। अंदर ही अंदर कुछ चटखने लगा।

''कुछ याद आया बाबूजी ?'' तथागत जैसे पीछे पड़ गया।

''क...क्या याद आया ! क्या मतलब है तुम्हारा इस सबसे ?'' कॉमरेड 'प्रचंड' के शब्द टूटने लगे।

''बाबूजी, असलियत से क्यों मुँह मोड़ रहे हो। आपके चाहने से नहीं बदलने वाली है यह दुनिया। यह अपनी ही गति से बदलेगी। गीदड़ों के पकाए से कभी बेर नहीं पकते हैं। विचारधारा का लबादा ओढ़ने से आदमी की पहचान और चरित्र नहीं बदलता है। क्यों नहीं आपके इन कॉमरेडो ने कभी जातिवाद के विरोध में मानव शृंखला बनाई....क्यों नहीं इसके विरोध में इंडिया गेट और जंतर–मंतर पर मोमबत्तियाँ जलाई, या फिर क्यों नहीं इन गांधीवादियों ने इसके खिलाफ कभी सत्याग्रह या अनशन किया। किसी दलित या अल्पसंख्यक बच्ची के हाथों जूस या पानी पीने से व्यक्ति जातिगत कुंठा से मुक्त नहीं हो जाता।''

एक साथ कई दृश्य जीवित हो उठे कॉमरेड 'प्रचंड' की आँखों के आगे।

''हर दुर्घटना बाबूजी एक नया दरवाजा खोलती है। अगर अगर मार्क्सवादी–कम्युनिस्ट आंदोलनों पर हमले तेज हुए हैं, तो उसने दलितों और स्त्रियों को संगठित होने के रास्ते भी दिखाए हैं। रही बात इस एनजीओ की दुनिया की, तो इस साम्राज्यवादी कुचक्र का सबसे ज्यादा शिकार वही गांधीवादी और वामपंथी हुए हैं जिनके लिए विचारधारा महज एक हथियार था। आपके कबीर और सानिया पटेल दोनों पति–पत्नी इसके बड़े उदाहरण हैं।''

बेटे तथागत के तर्कों से कॉमरेड सोहनलाल 'प्रचंड' का शरीर जैसे ठंडा पड़ने लगा। शरीर में पैदा होने वाली हरकत मानो ठहर–सी गई।

''एक बात और बाबूजी, पता नहीं क्यों हम इस सच्चाई को अभी भी स्वीकार नहीं कर पा रहे हैं कि हमारी पहली पहचान हमारा धर्म और जाति है। वामपंथी या गांधीवादी होना उस डिग्री की तरह है जो बस हमारी तरक्की में काम आता है।''

तथागत ने अपने तर्कों से अपने पिता कॉमरेड सोहनलाल 'प्रचंड' के चारों और एक ऐसी अभेद्य दीवार खड़ी कर दी, जिसे भेदना कॉमरेड 'प्रचंड' के लिए कठिन हो गया।

''बाबूजी, आप तो बेवजह परेशान हो रहे हैं। इस कोठरी की दीवारों पर टँगी इन पुरानी पड़ चुकी लेनिन और मार्क्स की तस्वीरों से बतियाना छोड़िए और बाहर आकर देखिए कि दुनिया कितनी बदल चुकी है। जिन गांधीवादियों की रूखी बिवाइयों से आजादी का खून रिसता था, आज वही पाँव जमीन पर नहीं टिकते हैं। जिन वामपंथियों का गला साम्राज्यवादियों के खिलाफ नारे लगाते हुए सूख–सूख जाता था, आज वही इनके सबसे बड़े बौद्धिक दलाल बने हुए हैं।''

कॉमरेड सोहनलाल 'प्रचंड' का जिस्म जैसे ऐंठ–सा गया है। आँखें सामने दीवार पर टँगी पुरानी तस्वीरों पर जाकर टिक गई। उन्हें पता ही नहीं चला कि

बहू–बेटे पुरानी तस्वीरों से बतियाता छोड़, कब वहाँ से चले गये। कमर सीधी करने की गरज से लेटते हुए वे सोचने लगे कि इस तख्त के बारे में बहू कविता ने जो कुछ थोड़ी देर पहले कहा था, गलत नहीं कहा था। सचमुच उन्हें यह तख्त अब बदल देना चाहिए, वरना ऐसा ना हो कि किसी दिन यह अचानक चरमरा कर ध्वस्त हो जाए। लेटने के बाद कॉमरेड 'प्रचंड' ने सबसे पहले यही निर्णय लिया कि वे इसे जल्दी ही बदल लेंगे। हटवा देंगे अपने इस सीलन भरे कमरे से इस पुराने तख्त को जो उनके संघर्षशील अतीत और दुनिया बदलने में सपनों का साक्षी रहा है।

''आचार्यजी, जैसी आपकी इच्छा। जब आपने निर्णय ले ही लिया है तब मैं आपको नहीं रोकूँगी।'' गहरी साँस ले बहन भाग्यवती ने अंततः गंगाधर आचार्य के फैसले को सबके सामने स्वीकारते हुए कहा।

''अगर बुरा न मानें तो एक बात कहूँ ? दरअसल मैम, जवाब इनकी हिम्मत ने नहीं दिया है..... असली बात यह है कि ये अपने आपको हमारी सिविल सोसाइटी में फिट नहीं कर पा रहे हैं....क्यों आचार्यजी ?''

''यह आपका पक्ष हो सकता है वंदनाजी, मगर मैं ऐसी अघाई भीड़ से अपने आपको दूर ही रखना चाहता हूँ जिसके लिए ये इंडिया गेट, जंतर–मंतर, राजघाट ऐसी मजारें हो गई हैं कि पूरे दिन पाप करो और साँझ होते ही जली हुई मोमबत्तियों के साथ उन्हें धो आओ। दुर्भाग्य से यही फैब इंडियाई जंतर–मंतरी अपने आपको इस देश का भाग्य–विधाता मानने का भ्रम पाले हुए हैं, वह भी जनता से माँगे गए चंदे के बल पर।''

''आचार्यजी, आपको इस सिविल सोसाइटी से आखिर इतनी नफरत क्यों है ?'' सामाजिक चिंतक डॉ. वंदना राव के नथुने फड़फड़ाने लगे।

''मुझे किसी से कोई नफरत या ईर्ष्या नहीं है....मुझे नफरत है उस प्रपंच से जिसने स्याह और सफेद व बुरे और अच्छे का अंतर ही मिटा दिया है....शब्दों के मतलब और उनकी तार्किकता को ही खत्म कर दिया है.....यह वही सिविल सोसाइटी है जो शिक्षा की बड़ी–बड़ी दुकानें और शो–रूम खोलकर, मुँहमाँगी मोटी रकम वसूल कर कॉरपोरेट लुटेरों की फौज तैयार कर रही है.....एक तरफ यह प्रगतिशील होने का ढोंग रचती है, तो दूसरी तरफ धार्मिक पाखंड का पोषण करती है।''

गंगाधर आचार्य के इस वाक्य पर पूरे चैंबर में सिहरन–सी दौड़ गई।

''.....वंदनाजी, मैं तो उस दुचित्तेपन से नफरत करता हूँ जो एक तरफ अपने आपको सबसे बड़ा देशभक्त मानता है और दूसरी तरफ वह सांप्रदायिकता, जातिवाद, भ्रष्टाचार, भेदभाव और झूठे दंभ जैसी व्याधियों से सबसे ज्यादा ग्रस्त है.....यह वही सिविल सोसाइटी है जो सांप्रदायिक दंगो में सज–धजकर लूटे गए सामान के साथ ऐसे ही देशभक्तों की अगुवाई करता है.....

''खैर छोड़िए....बहनजी, मैं तो आपसे यही निवेदन करने आया हूँ कि मुझे इस ठगों और धोखेबाजों के स्वर्ग से मुक्त करिए...मुझे इस स्वर्ग में रहने का शौक नहीं है...मुझसे निहत्थों के विरुद्ध होने वाली हिंसा, जो भले ही दिखाई नहीं देती हो, अब बर्दाश्त नहीं होती....मैं सर्वोदयी कल्याण सभा की अपनी इस छोटी–सी मैली–कुचैली दुनिया में ही खुश हूँ...इतना आत्मबल तो बापू सिखा ही गए हैं कि दीनहीनों के बीच कैसे रहा जाता है। मेरी आत्मा इस बात की गवाही नहीं देती है कि गरीबों और मजलूमों के हिस्से को मार मैं चुपड़ी खाऊँ..... मैं तो अपनी इस फाकाकशी में मस्त हूँ।''

वातानुकूलित चैंबर में कँपकँपा देने वाली ठंडक के बावजूद बहन भाग्यवती के ललाट पर पसीना छलछला आया। चेहरे की रक्त कोशिकाओं का रंग फीका पड़ गया।

राष्ट्रीय बाल एवं महिला कल्याण परिषद की दोबारा बनी नई–नई अध्यक्ष के ठिठुरते चैंबर में छा गए निर्दोष मौन को भेदते हुए गंगाधर आचार्य विदा लेने के लिए खड़े हो गए।

''मैं...मैं गाड़ी से छुड़वा देती हूँ !'' बहन भाग्यवती जानती है कि आचार्यजी का एकमात्र ठिकाना गांधी शान्ति प्रतिष्ठान ही है।

''नहीं, मुझे अभी प्रतिष्ठान नहीं समाधि स्थल जाना है।''

''तो फिर मैं छोड़ देती हूँ मैम ! मुझे भी राजघाट ही जाना है गांधी दर्शन।'' गांधी स्मृति एवं दर्शन की नई–नई डायरेक्टर ने ठसके से कहा।

''सानियाजी, आप बातें करिए। मैं चला जाऊँगा। इस दिल्ली के कुछ–कुछ रास्ते थोड़े–बहुत मैं भी जानने लगा हूँ...मुझे किस रास्ते पर किस दिशा में जाना है, इतना तो मैं जानता हूँ.....अच्छा, आप सबको मेरा प्रणाम।'' विनम्रता के साथ हाथ जोड़ते हुए पूरे चैंबर से विदा ले गंगाधर आचार्य बाहर आ गए।

अध्ययन का उद्देश्य

इसका मुख्य उद्देश्य दलित परिवार को समाज में आने वाली कठिनाइयों को उभारना एवं उनके समाधान का रास्ता ढूँढना है।

निष्कर्ष

दलित लेखकों का लिखना क्यों जरूरी है, इसकी खोज की जाए तो कलाकार, कलाकृति और समाज की रिश्तेदारी का विचार स्पष्ट होता है। इस विचार में ही दलित साहित्य के सौंदर्यशास्त्र का ब्योरा छिपा है।

दलित साहित्य के मूल्यांकन के लिए निम्नलिखित कसौटियाँ निश्चित की जा सकती हैं –

1. कलाकार को अपने अनुभव से प्रमाणित होना चाहिए।
2. कलाकारों के अनुभवों का सार्वजनिककरण होना चाहिए।
3. कलाकार के अनुभव में प्रदेश की सीमा पार करने की शक्ति होनी चाहिए।
4. कलाकार का अनुभव किसी भी काल में ताजा लगना चाहिए।
5. मराठी समीक्षकों द्वारा मराठी साहित्य का सौंदर्यशास्त्र आनंदवादी होने पर भी उनका स्वरूप हथियार के समान नहीं है। मराठी समीक्षकों ने मराठी साहित्य के सौंदर्यशास्त्र का दलित साहित्य के संदर्भ में भी उपयोग नहीं किया।

वर्तमान परिवेश में सामाजिक एवं धार्मिक सुधार आंदोलन आधुनिक युग की देन है।

सदियों से उपेक्षित एवं कुण्ठित मानव आधुनिक युग में अपने आपको तथा अपनी महान शक्ति को पहचान सका। शोषित, उपेक्षित, दलित आदिवासी समाज में अपना विद्रोह अनेक माध्यमों से व्यक्त करने लगा। इसकी पुष्टि साहित्य में भी साफ दिखाई देती है। साहित्य में मानव के सर्वांगीण विकास के लिए नया द्वार खोल दिया। दलित आंदोलन पूरे देश में गतिमान हो गया और उसका व्यापक चित्रण साहित्य में होने लगा। खेद है कि दलित–चेतना का व्यापक आंदोलन गाँवों की अपेक्षा शहरों एवं नगरों तक सिमट कर रह गयी है। वास्तविक दृष्टि शहरों में भी यदि हम गहराई से देखें तो मालूम होगा कि महलों में रहने वाले अमीरों की चक्की में झोंपड़ी और फुटपाथों में रहने वाला गरीब मजदूर वर्ग दलित बनकर पीसा जा रहा है। नगरों में होने वाले अत्याचारों की तुलना में गाँवों में होने वाले अत्याचारों का स्वरूप उग्र रहता है। आज आवश्यक है कि दलित आंदोलन तथा दलित साहित्य जिसमें दलितों की वेदना का सहानुभूतिपूर्ण चित्रण हो, उस परिवेश तक पहुँच जाए, जहाँ उपेक्षित दीन–दलित, शोषित एवं पीड़ित वर्ग देहात के धनिक किसानों एवं सवर्ण समाज तथा पूँजीवाद की चक्की में पीसा जा रहा है। साहित्य को इस आंदोलन की ओर आस्थापूर्वक देखना चाहिए। साहित्यकार का यह नैतिक दायित्व बनता है कि वे अपनी कलम की रोशनी से समाज के दलित–शोषित एवं पीड़ित मानव की वेदना एवं पीड़ा को अभिव्यक्त कर उसे नयी दिशा प्रदान करें। दलित आंदोलन के विश्वव्यापी संग्राम में साहित्यिक अपना महत्वपूर्ण योगदान तभी दे पाएगा, जबकि वह साहित्य के माध्यम से दलितों का विद्रोह एवं उनकी क्रांति की आवाज़ बुलंद करेगा।

आज हमें भगवान बुद्ध, श्री गुरूघासीदास, रविदास, महर्षि वाल्मीकि, सद्गुरू कबीर, बाबा साहब डॉ. अम्बेडकर तथा बाबू जगजीवन राम जी के संदेशों को समन्वय करके चलने की जरूरत है। इससे ही दलित समाज आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक एवं धार्मिक स्तर पर सुदृढ़ होगा और हमारी सुदृढ़ता ही हमारी सफलता की निशानी है। हम जिस दिन जाग जाएँगे, उस दिन कोई हमारे अधिकारों को दबाकर नहीं रख सकेगा। दलित चेतना को जागृत करने में पत्र–पत्रिकाओं और साहित्यिक कृतियों का बड़ा योगदान रहा है। दलित चेतना के कारण दलितों में जो आत्म–सम्मान का बोध उभरा, उससे संघर्ष की स्थिति भी पैदा हुई। गाँव–शहर एवं महानगरों में दलितों पर हुए अत्याचार इस बात की गवाही देते हैं कि दलितों ने मनुवादी व्यवस्था को ठुकराना शुरु कर दिया है। वे भी मनुष्य हैं तथा बिना भेद–भाव के समान रूप से देश की संपत्ति में उनका भी उतना ही हिस्सा है जितना सामान्य वर्ग के लोगों का। यह भावना आज प्रत्येक दलितों के हृदय में भर चुकी है।

आज भी दलितों को अपने अधिकारों के लिए आंदोलनों का सहारा लेना पड़ता है। इसके लिए नितांत आवश्यकता है कि समाज में आर्थिक विषमता दूर हो तथा कमजोर वर्ग की आर्थिक दशा सुधर जाए। इसके साथ ही सवर्णों की दृढ़मूल पारम्परिक मानसिक स्थिति तथा शोषकों की शोषक नीति में भी परिवर्तन हो जाना आवश्यक है।

दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र अपंग सौंदर्यशास्त्र निर्मित हुआ है। सौंदर्य की जो हमारी अनुभूति है, हमारे भीतर सुंदर की जो भावदशा है, सुंदरता को ग्रहण करने की जो ग्राहकता है, सौंदर्य के संबंध व्यक्ति को गहराई में ले जाते हैं, वह संवेदनशील होता है। उसमें नैतिकता पैदा होती है। सौंदर्य की अनुभूति मनुष्य को जगत से ऊपर उठाती है, विराट से जोड़ती है। सत्यम्–शिवम्–सुन्दरम् ये तीनों ही मनुष्य की भाव दशाएँ हैं। सत्यम्–शिवम्–सुंदरम् का दर्पण दलित साहित्य है।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची

बाबल तेरा देस में, भगवानदास मोरवाल, पृ0 26
'रेत' भगवानदास मोरवाल, पृ0 21–23
'रेत' भगवानदास मोरवाल, पृ0 64
'रेत' भगवानदास मोरवाल, पृ0 89–91
'रेत' भगवानदास मोरवाल पृ0 174–175
रेत' भगवानदास मोरवाल पृ0 211